

## प्रथमोऽध्यायः

# आयुष्कामीय प्रथम अध्याय का सारांश

मंगल चरण के पश्चात् अष्टाङ्ग हृदय के लेखक ने आरोग्य प्राप्ति के सूत्रों का इस अध्याय में वर्णन किया है इसीलिए सुखायु की प्राप्ति करने वाले इस अध्याय का नाम आयुष्कामीय किया गया।

आयुर्वेद अवतरण का उपदेश पितामह ब्रह्मा से प्रारम्भ कर आत्रेय एवं अग्निवेश तक किया। आयुर्वेद के आठ अंग, शारीरिक तीन दोष, वात पित्त एवं कफ, मानस दोष रज एवं तम के साथ इनके स्थान, लक्षण, भोजन, आयु, दिन एवं रात्रि में इनकी स्थिति का वर्णन किया है, अग्नि एवं कोष्ठ पर दोषों का प्रभाव, प्रकृति निर्माण में दोषों की कारणता, दोषों के पृथक पृथक गुण, संसर्ग एवं सन्निपात, सप्तधातु वर्णन, तीन मल तथा दोष, धातु एवं मलों की समस्थिति से शरीर पोषण, वर्धन तथा विषम स्थिति में रोगोत्पत्ति होने का वर्णन, छः रसों का वर्णन, रसों के प्रभाव से दोषों का वर्धन एवं शमन, समस्त द्रव्यों के शोधन एवं शमन दो प्रकार, गुणों के 20 भेद, वीर्य के दो भेद शीत एवं उष्ण, तीन प्रकार के विषाक, मधुर, अम्ल, कटु, काल, अर्थ एवं कर्म के हीन, मिथ्या एवं अतियोग से रोगोत्पत्ति होना, रोगों के आश्रय शरीर एवं मन, निज एवं आगन्तुक रोग भेद वर्णन, रोग रोगी परीक्षा विधि, जांगल, आनूप साधारण रूप भूमि देश वर्णन एवं रोगोत्पत्ति के लिए शरीर देश, देशों में साधारण देश को उत्तम बताया है, काल वर्णन, औषध के दो प्रकार शोधन एवं शमन, दोषों के शमन में वात के लिए बस्ति, पित्त के लिए विरेचन तथा कफ के लिए वमन विधि तथा औषध रूप में वात के लिए तैल, पित्त के लिए घी तथा कफ के लिए मधु परमौषध है। चिकित्सा के चारपाद वैद्य, औषध, परिचारक एवं रोगी। चारों के चार चार गुणों का वर्णन, रोगों की साध्या साध्यता भेद का भी वर्णन किया है अन्त में ग्रन्थ के छः स्थानों के 120 अध्यायों का नाम वर्णन किया गया है।



**श्रीगणेशाय नमः**  
**अष्टाङ्ग हृदयम्**  
( भगवती हिन्दी टीका सहित )  
**अथ सूत्रस्थानम्**  
**प्रथमोऽध्यायः आयुष्कामीयम्**

रागादिरोगान्सततानुष्टकानशेषकायप्रसृतानशेषान्।  
औत्सुक्यमोहाऽरतिदाव्जघान योऽपूर्ववैद्याय नमोऽस्तु तस्मै॥1॥

सभी प्राणियों के शरीर में फैले हुए तथा सभी कालों में रहने वाले, उत्सुकता, अज्ञान तथा अशान्ति को उत्पन्न करने वाले जो रागादि (राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादि) मानसिक रोग एव वात-पित्त तथा कफ की विषमावस्था से उत्पन्न होने वाले शारीरिक रोग तथा जन्म मरणादि स्वाभाविक रोगों को समूल नष्ट करने वाले जो अनादि वैद्य (ब्रह्मादि त्रिदेव) वीत राग भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ।

अथात आयुष्कामीयमध्यायं व्याख्यास्यामः। इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः।

इसके बाद आयुष्कामीय अध्याय की व्याख्या करेंगे जैसा भगवान आत्रेय आदि महर्षियों ने कहा है।

**ग्रन्थ का मन्तव्य :-** आयुर्वेद का प्रथम उद्देश्य शास्त्रों में स्वस्थ शरीर की रक्षा करना बताया है अतः वाग्भट ने भी सर्वप्रथम आयुष्कामीय अध्याय की व्याख्या करेंगे ऐसा लिखने के साथ अपने विषय की प्रामाणिकता के लिए लिखा कि जैसा भगवान आत्रेय आदि महर्षियों ने कहा था। इस ग्रन्थ का आधार प्राचीन संहिताएं हैं। महर्षियों के उपदेश का वर्णन कर वाग्भट ने अपने ग्रन्थ को आर्ष श्रेणी का ग्रन्थ सिद्ध किया है। इसका अभिप्राय यह है कि जो कुछ ग्रन्थ में कहा जायेगा वह पूर्व महर्षियों के ही वचन हैं उन्हें काल क्रम से मैं जनमानस के अनुरूप लिख रहा हूँ।

आयुःकामायमानेन धर्मार्थं सुखं साधनम्।  
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥2॥

**आयुर्वेद की उपयोगिता :-** दीर्घायु को चाहने वाले व्यक्तियों को चाहिए कि धर्म, अर्थ एवं सुख का साधन देने वाली आयु के लिए आयुर्वेद के उपदेशों के अनुसार अपना आहार-विहार, आचार-विचार एवं व्यवहार बनाये रखें। यही आयुर्वेद के उपदेशों के प्रति आदर करना है।

ब्रह्मा स्मृत्वाऽयुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत्।  
सोऽशिवनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन्॥3॥  
तेऽग्निवेशादिकार्स्ते तु पृथक् तन्त्राणि तेनिरे।

**आयुर्वेद परम्परा :-** सर्वप्रथम सृष्टि कर्ता पितामह ब्रह्मा ने आयुर्वेद का स्मरण करके दक्ष प्रजापती को इसका उपदेश किया। प्रजापति ने अश्विनी कुमारों को उपदेश किया, अश्विनी कुमारों ने देवराज इन्द्र को तथा इन्द्र ने आत्रेय आदि महर्षियों को वह सम्पूर्ण ज्ञान दिया। उनसे अग्निवेशादि ऋषियों ने पढ़कर अपने अपने तन्त्रों (ग्रन्थों) की रचना की।

**तेभ्योऽतिविप्रकीर्णेभ्यः प्रायः सारतरोच्चयः॥१४॥**  
**क्रियते अष्टांगहृदयं नातिसंक्षेपविस्तरम्।**

**ग्रन्थ रचना का उद्देश्य :-** पूर्व काल के महर्षियों द्वारा लिखे गये ग्रन्थ अत्यन्त विस्तार से थे तथा विषय इधर उधर बिखरे हुए थे। इसलिए उन शास्त्रों में से उपयोगी विषयों का सार भाग लेकर एक साथ एकत्रित करने के लिए मैं इस अष्टाङ्ग हृदय नामक ग्रन्थ की रचना कर रहा हूँ। यह न तो अत्यन्त संक्षेप में है और न ही अधिक विस्तार में है अतः सभी के समझने योग्य हैं। आयुर्वेद के आठों अंगों का हृदय (सार) रूप होने से इसे अष्टाङ्ग हृदय कहा गया है।

**कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान्॥१५॥**  
**अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता।**

**आठ अंगों का नाम वर्णन :-** चिकित्सा के आठ अंग हैं। इन आठ अंगों में समस्त चिकित्सा विषयों का समावेश हो जाने से यह ग्रन्थ अष्टाङ्ग हृदय है। 1. काय चिकित्सा, 2. बाल चिकित्सा 3. ग्रह या भूतविद्या 4. ऊर्ध्वाङ्ग (शालाक्य) चिकित्सा 5. शल्य चिकित्सा, 6. दंष्ट्रा (अग्रद तन्त्र एवं विष विज्ञान) चिकित्सा 7. जरा (रसायन) चिकित्सा, 8. वृष (वाजीकरण) चिकित्सा।

**जानने योग्य :-** 1. काय चिकित्सा-रस रक्तादि धातु, वातादि दोष एवं मलों की विकृति से सम्पूर्ण शरीर में उत्पन्न होने वाले ज्वर, रक्तपित्त, अतिसार आदि विकारों के उपचार की या शान्त करने की विधि काय चिकित्सा है। शरीर की अग्नि का नाम भी काय है अतः इसी की स्थिति सम रखने की क्रिया काय चिकित्सा है। 2. बाल चिकित्सा- इसमें बालकों के लालन पालन, धाय, दूध पीना, दूध के विकार तथा बालकों के अन्य रोगों की निवृत्ति, ग्रह शान्ति आदि विधि का वर्णन होने से इसे बाल तन्त्र या कौमारभूत्य कहते हैं। 3. मानसिक रोग तथा असुर, गन्धर्व, यक्ष, कृत्या प्रयोग, सूर्यादि ग्रहों से होने वाले रोगों की शान्ति करने की चिकित्सा ग्रह या भूतविद्या है। 4. गर्दन से ऊपर के भाग में होने वाले, गले, मुख, नासा, नेत्र एवं कान में होने वाले रोगों की चिकित्सा को शालाक्य तन्त्र कहते हैं। 5. शरीर में किसी बाह्य वस्तु के प्रवेश करने, शस्त्राघात या आन्तरिक अंगों को शस्त्र द्वारा निकालना या प्रविष्ट वस्तु को बाहर निकालने की क्रिया होने से इसे शल्य चिकित्सा कहा है। 6. सांप आदि के काटने से उत्पन्न रोग की चिकित्सा दंष्ट्रा अर्थात् अग्रद तन्त्र है। 7. जरा-जिस चिकित्सा में शरीर की धातुओं को पुष्ट करने की क्रिया हो वह रसायन तन्त्र है। 8. जिस चिकित्सा से व्यक्ति को पुष्ट एवं शुक्रवान बनाया जाय वह वाजीकरण चिकित्सा है।

वर्तमान में अध्ययन की सुविधा से आयुर्वेद के अनेक अंगों का विषय रूप में वर्णन किया गया है तथापि वे सभी विषय इन आठ अंगों में ही आ जाते हैं। उनको पृथक करके पढ़ाने से छात्रों को पढ़ने एवं हृदयांगम करने में सुविधा रहती है। विस्तार से देखें तो वर्तमान में आयुर्वेद को 20 विषयों में पढ़ा जा रहा है। (देखें लेखक का षोडशांग चिकित्सा)

**वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः॥६॥**

**वातादि दोष वर्णन :-** संक्षेप में दोष तीन हैं-वात, पित्त एवं कफ।

**विशेष :-** अपनी विकृत अवस्था में शरीर धातुओं को दूषित करने के कारण इन्हें दोष कहते हैं। सम अवस्था में रहते हुए शरीर की वृद्धि में सहायक होते हैं। यहां संक्षेप में कहने का अर्थ है कि आगे इनके पांच-पांच भेद, स्थान एवं स्थिति का वर्णन किया जायेगा।

**विकृताऽविकृता देहं घन्ति ते वर्तयन्ति च।  
ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः॥७॥**

**दोषों का शरीर पर प्रभाव एवं इनके स्थान :-** ये वात, पित्त एवं कफ विकृत हो जाय तो शरीर में हानि करते हैं। जब सम अवस्था या अविकृत अवस्था में रहते हैं तो शरीर को स्वस्थ रखते हैं।

ये तीनों यद्यपि सारे शरीर में फैले हुए हैं तथापि वायु का स्थान हृदय एवं नाभि के नीचे के भाग में, हृदय एवं नाभि के मध्य भाग में पित्त तथा हृदय के ऊपर के भाग में कफ का स्थान बताया गया है।

**वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यांदिगाः क्रमात्।**

**दोषों की स्थिति :-** ये वातादि दोष, आयु, दिन, रात्रि एवं भोजन के अन्त में मध्य में एवं आदि में क्रमशः बलवान होते हैं। जैसे बाल अवस्था में कफ, युवावस्था में पित्त तथा वृद्धावस्था में वायु की प्रधानता होती है। इसी प्रकार प्रातः काल में कफ, मध्य दिन में पित्त तथा सांयकाल में वायु प्रबल होती है। रात्रि के प्रथम भाग में कफ, मध्य रात्रि में पित्त तथा रात्रि के अन्तिम प्रहर में वायु की प्रधानता होती हैं। इसी प्रकार भोजन करते समय कफ, भोजन के पचते समय पित्त तथा भोजन पच जाने पर वायु की प्रधानता रहती है। ये तीनों दोष अपने अपने प्रधान काल में प्रबल होने से शरीर को स्वस्थ रखते हैं एवं बढ़ते भी हैं तथा विकृति से रोगों को उत्पन्न भी करते हैं।

**तैर्भवेद्विषमस्तीक्ष्णो मन्दश्चाग्निः समैः समः॥८॥**

**दोषों से जठराग्नि की स्थिति :-** उन दोषों में वात की अधिकता से मनुष्यों की जठराग्नि विषम होती है, (खाये हुए आहार को कभी पचाती है कभी नहीं पचाती)। पित्त दोष की अधिकता से जठराग्नि तीक्ष्ण होती है (यही भस्मक रोग का कारण है)। कफ की अधिकता से शरीर की जठराग्नि मन्द हो जाती है (इसमें भी आहार ठीक से नहीं पचता है-भूख भी कम हो जाती हैं)। इन तीनों दोषों की सम अवस्था से जठराग्नि सम होती है। जो भोजन का पाचन ठीक प्रकार से करती है।

**कोष्ठः क्रूरो मृदुर्मध्यो मध्यः स्यात्तैः समैरपि।**

**दोषों से कोष्ठ की स्थिति :-** वात की प्रबलता से कोष्ठ क्रूर होता है। पित्त की अधिकता से मृदु, कफ की अधिकता से मध्यम होता है। तीनों की समानता से भी मध्यम रहता है अर्थात् सम ही होता है।

**विशेष :-** कोष्ठ की दृष्टि से भी आहार एवं औषध की मात्रा एवं बल का अनुमान करके प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

**शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषक्रिमेः॥१९॥**  
**तैश्च तिसः प्रकृतयो हीनमध्योत्तमाः पृथक्।**  
**समधातुः समस्तासु श्रेष्ठा निन्द्या द्विदोषजाः॥१०॥**

**प्रकृति वर्णन :-** जन्म से पूर्व शुक्र एवं आर्तव में होने वाली वात, पित्त एवं कफ की न्यूनाधिकता से मनुष्यों की प्रकृति (स्वभाव) उसी प्रकार बनती है जिस प्रकार विष से विषज कृमि उत्पन्न होते हैं। वायु के कारण (अधिकता से) हीन, पित्त की अधिकता से मध्य तथा कफ की अधिकता से उत्तम प्रकृति बनती है। इन तीनों दोषों की सम स्थिति से सम प्रकृति बनती है जो श्रेष्ठ मानी जाती है। दो दो दोषों की अधिकता से द्वन्द्वज प्रकृति बनती है। वात पित्तज, कफ पित्तज तथा वात कफज इन तीनों प्रकृतियों को निन्दित बताया गया है। शरीर में रहते हुए ये दोष कार्य, स्वभाव एवं स्थिति में भिन्न होते हुए भी एक दूसरे के लिए हानि कर नहीं होते जैसे सर्प, कृमि, कीटादि के शरीर में होने वाला विष सर्पादि को कोई हानि नहीं पहुंचाता।

**तत्र रुक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः।**  
**पित्तं सस्नेहतीक्षणोष्णं लघु विस्त्रं सरं द्रवम्॥११॥**  
**स्निग्धः शीतो गुरुर्मन्दःश्लक्षणो मृत्स्नः स्थिरः कफः।**  
**संसर्गः सन्निपातश्च तद्द्वित्रिक्षयकोपतः॥१२॥**

**वात दोष के गुण :-** रुक्ष, लघु, शीत, खर, सूक्ष्म एवं चञ्चल हैं। (ये गुण क्रमशः एक दूसरे से उत्तरोत्तर कम बल वाले होते हैं)

**विशेष :-** अन्य शास्त्रों में वायु का अनुष्णाशीत गुण भी माना है क्योंकि यह उष्ण के सम्पर्क से उष्ण एवं शीत के सम्पर्क से शीतल होता है।

**पित्त के गुण :-** इष्ट (कुछ) स्निग्ध, तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, विस्त्र, सर एवं द्रव है।

**कफ के गुण :-** स्निग्ध, शीतल, गुरु, मन्द, श्लक्षण (मृदु) मृत्स्न (पिच्छिल) तथा स्थिर है।

**संसर्ग एवं सन्निपात :-** अपनी प्राकृतिक स्थिति से क्षीण या बढ़े हुए दो दोषों के मेल का नाम संसर्ग तथा ऐसे ही तीनों दोषों के संयोग को सन्निपात कहा जाता है।

**रसासृङ्गमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि धातवः।**  
**सप्त दूष्या, मला मूत्रशकृत्स्वेदादयोऽपि च॥१३॥**  
**वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः।**

**शरीर की धातु :-** रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र ये सातों शरीर की धातुयें हैं। इन्हें दूष्य भी कहा जाता है। विकृत अवस्था में दोष इन्हें दूषित करते हैं इसीलिए इनको दूष्य कहा जाता है।

**शरीर के मल :-** मूत्र, पुरीष (मल) तथा स्वेद ये शरीर के तीन मल कहे गये हैं।

**दोष धातु एवं मलों की वृद्धि एवं हास का कारण :-** ये सभी दोष, धातु और मल आदि अपने अनुकूल स्वभाव वाले आहार विहार से बढ़ते हैं तथा विपरीत गुण वाले आहार-विहार से क्षय को प्राप्त होते हैं।

**रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषणकषायकाः॥14॥**

**षड् द्रव्यमाश्रितास्ते तु यथापूर्वं बलावहाः।**

**छः प्रकार के रस विवरण :-** सभी पांच भौतिक द्रव्यों में रहने वाले रस छः प्रकार के हैं— मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय। ये पूर्व क्रम से अधिक बल देने वाले होते हैं। अर्थात् अधिक बल देने वाले मधुर फिर अम्ल, फिर लवण, इससे कम तिक्त उससे कम कटु एवं कषाय हैं। सभी मीठे पदार्थ मधुर रस वाले हैं। इमली, नींबू आदि अम्ल रस प्रधान हैं, सैन्धव, सौंचर आदि लवण रस है, नीम आदि में तिक्त रस हैं। काली मिरच आदि कटु रस हैं तथा हरड़ आदि में कषाय रस हैं। (आगे रसों के 63 भेद बताये हैं जो इनके आपस में मिलने से बनते हैं।)

**तत्राऽद्या मारुतं घन्ति त्रयस्तिक्तादयः कफम्॥15॥**

**कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते।**

**दोषों पर रसों का प्रभाव :-** इन छः रसों में पहले के तीन अर्थात् मधुर, अम्ल, लवण, वायु को शान्त करने वाले तथा शेष तीन तिक्त कटु कषाय वायु को बढ़ाने वाले एवं कुपित करने वाले हैं। इसी तरह तिक्त कटु-कषाय कफ को शान्त करते हैं एवं मधुर अम्ल लवण कफ को बढ़ाते हैं। तिक्त कषाय एवं मधुर पित्त को शान्त करते हैं तथ अम्ल, लवण, कटु, पित्त को बढ़ाते हैं। इसी दृष्टि से इनके प्रयोग के समय दोषों का ध्यान रखकर ही उपयोग करना चाहिए।

**शमनं कोपनं स्वस्थहितं द्रव्यमिति त्रिधा॥16॥**

**उष्णशीतगुणोत्कर्षात्तत्र वीर्यं द्विधा स्मृतम्।**

**त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वाद्वम्लकटुकात्मकः॥17॥**

**द्रव्यों के भेद :-** ये बताये गये सभी रस द्रव्यों में रहते हैं। वे सभी द्रव्य तीन प्रकार के हैं। कुछ द्रव्य दोषों को शमन करने वाले हैं, कुछ द्रव्य दोषों को कुपित करने वाले हैं तथा कुछ द्रव्य ऐसे हैं जो शरीर को स्वस्थ रखने वाले हैं अर्थात् दोषों की स्थिति को सम बनाये रखते हैं।

**द्रव्यों की वीर्य शक्ति :-** सभी द्रव्यों में उष्ण एवं शीत दो प्रकार के गुणों की उत्कृष्टता या उत्कर्षता से वीर्य दो प्रकार का है। प्रधान रूप से समस्त संसार की स्थिति या स्वभाव दो प्रकार का है उष्ण या शीत। यही बात मनुष्यों के साथ भी है। उष्ण प्रकृति वाले या शीत प्रकृति वाले। यही उष्ण एवं शीत वीर्य द्रव्यों की शक्ति कही जाती है।

**द्रव्यों का विपाक :-** समस्त द्रव्यों का उनके गुण, रस एवं प्रकृति के अनुसार पाचन के पश्चात् तीन प्रकार का विपाक होता है मधुर, अम्ल एवं कटु। रसों की दृष्टि से मधुर एवं लवण रस वाले द्रव्यों का

विपाक मधुर होता है। अम्ल पदार्थों का विपाक अम्ल तथा तिक्त, कटु, कषाय द्रव्यों का विपाक कटु होता है।

**गुरुमन्दहिमस्निग्धश्लक्षणसान्द्रमृदुस्थिराः।  
गुणः ससूक्ष्मविशदा विंशतिः सविपर्ययाः॥18॥**

**द्रव्यों के गुण :-** द्रव्यों में 20 प्रकार के गुण होते हैं अर्थात् सभी द्रव्य 20 प्रकार के गुणों वाले होते हैं। किसी में कोई गुण विशेष तो किसी में कोई गुण सामान्य रूप से होता है—गुरु, मन्द, हिम, स्निग्ध, श्लक्षण, सान्द्र, मृदु, स्थिर, सूक्ष्म एवं विशद ये दश तथा इनके विपरीत 10 गुण लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, रुक्ष, खर, द्रव, कठिन, चल, स्थूल एवं पिछ्छिल हैं।

**विशेष :-** यद्यपि आयुर्वेद में द्रव्य गुण की दृष्टि से इन 20 गुणों के अतिरिक्त 21 गुण और बताये हैं जिनका वर्णन प्रसंगवश आगे किया जायेगा। इनमें किस कर्म के लिए कौन सा गुण उपयोगी है इसका वर्णन शास्त्रों में किया है— बृहण में गुरु, कृश करने या लंघन में लघु, शमन करने में मन्द, शोधन कर्म में तीक्ष्ण, स्तम्भन में हिम या शीत, स्वेदन में उष्ण, क्लेदन में स्निग्ध, शोषण में रुक्ष, रोपण में श्लक्षण, लेखन में खर, प्रसादन में सांद्र तथा विलोडन, (मिलाने या पतला करने) में द्रव, श्लथन में मृदु तथा दृढ़ (मजबूत) करने में कठिन, धारण में स्थिर, प्रेरण (गति) में चल, विवरण में सूक्ष्म, संवरण में स्थूल, चालन में विशद तथा लेपन में पिछ्छिल गुण कार्य करता है।

**कालार्थकर्मणां योगो हीनमिथ्याऽतिमात्रकः।  
सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैककारणम्॥19॥**

**रोग एवं आरोग्य के कारण :-** काल, अर्थ तथा कर्म का अनुचित संयोग रोग का कारण हैं तथा इनका सम्यक् संयोग स्वास्थ्यकर होता है। अनुचित योग तीन प्रकार का है, हीनयोग, मिथ्यायोग तथा अतियोग तथा काल तीन प्रकार का है शीत, उष्ण एवं वर्षा। अर्था से पञ्चमहाभूतों के पांच गुण शब्द स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध लेते हैं। शरीर वाणी एवं मन की चेष्टाओं को कर्म कहा जाता है। इनके द्वारा जो हीन, मिथ्या और अतियोग होता है वही रोगों का कारण है। जैसे अपने अपने समय में शीत, वर्षा एवं गर्मी का हीन, मिथ्या, अतियोग हों। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अपने विषयों के ग्रहण करने में हीन, मिथ्या एवं अतियोग करना तथा शरीर, वाणी एवं मन की चेष्टाओं का हीन मिथ्या एवं अतियोग होना ही रोग का कारण होता है।

**रोगस्तु दोषवैषम्यं, दोषसाम्यरोगता।**

**रोगोत्पत्ति का सामान्य कारण :-** बताये गये तीन दोषों में से कोई एक या दो अथवा तीनों दोष अपने सम परिमाण से कम या अधिक हो जाय तो जो विकार होता है उसी का नाम रोग है। इन दोषों का अपनी प्राकृतिक अवस्था में सम बने रहना ही स्वास्थ्य है।

**निजागन्तुविभागेन तत्र रोगा द्विधा स्मृताः॥20॥  
तेषां कायमनोभेदादधिष्ठानमपि द्विधा।  
रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषावुदाहृतौ॥21॥**

**रोगों के भेद :-** रोगों के दो भेद बताये हैं एक निज दूसरा आगन्तुज है। निज रोग शरीर के दोषों की विषम स्थिति से उत्पन्न होकर शरीर एवं मन को पीड़ा पहुंचाते हैं। शस्त्रादि, अभिघात एवं बाह्य कारणों से उत्पन्न रोग आगन्तुज कहलाते हैं।

**रोगों का आश्रय या अधिष्ठान :-** इन दोनों प्रकार के रोगों का आश्रय भी दो प्रकार का होता है एक शरीर दूसरा मन। (जबर रक्तपित्त आदि रोगों का अधिष्ठान शरीर एवं मूर्छा, मद, सन्यास का अधिष्ठान मन हैं।)

**मन के दो दोष :-** रजोगुण एवं तमोगुण ये दो मन के दोष कहे गये हैं। (वैसे वातादि दोष भी मन में विकार उपन्न करते हैं।)

**विशेष :-** दोनों ही प्रकार के रोगों (निज एवं आगन्तुक) में वातादि दोष विकृत होते हैं। निज में पहले वातादि दोष विकृत होते हैं किन्तु आगन्तुज में पहले आघात आदि की पीड़ा होती है फिर शरीर के वातादि दोष कुपित होते हैं।

**दर्शनस्पर्शप्रश्नैः परीक्षेत च रोगिणम्।  
रोगं निदानप्रागूपलक्षणोपशयाऽप्तिभिः॥२२॥**

**त्रिविध रोगी परीक्षा :-** दर्शन (देखकर), स्पर्शन (छूकर) तथा प्रश्न अर्थात् रोगी को पूछकर, इन उपायों से रोगी की परीक्षा करें।

**रोग परीक्षा के पांच उपाय :-** निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय एवं सम्प्राप्ति इन पांच उपायों से रोग की परीक्षा करें। 1. रोग उत्पन्न करने वाले कारणों को निदान कहते हैं। 2. रोग उत्पन्न होने से पहले जो लक्षण दिखाई देते हैं जैसे बड़े व्यक्तियों के आने से पहले इन्तजाम आदि की जो हलचल होती हैं। उनसे उनके कार्यक्रम का अनुमान हो जाता है वे पूर्वरूप हैं। जो लक्षण रोग होने पर साथ साथ रहते हैं वे रूप या लक्षण हैं। गूढ़ लक्षणों वाले रोग का ज्ञान कराने वाला साधन उपशय है। रोग में कौन सा औषध आहार एवं विहार लाभदायक हैं यह भी उपशय से ज्ञात होता है। रोग कैसे उत्पन्न हुआ किस प्रकार बढ़ कर इस रूप में आया यह इतिहास ही सम्प्राप्ति है।

**भूमिदेहप्रभेदेन देश माहुरिह द्विधा।  
जाङ्गलं वातभूयिष्ठमानूपं तु कफोल्वणम्॥२३॥  
साधारणं सम्मलं त्रिधा भूदेशमादिशेत्।**

**भूमि एवं शरीर भेद से देश वर्णन :-** आयुर्वेद में भूमि देश एवं रोग के लिए देह या शरीर देश रूप भेद से दो प्रकार के देश बताये हैं- औषध एवं आहार की दृष्टि से मनुष्यों के शरीर भिन्न-भिन्न प्रकृति (स्वभाव, गुण) वाले होते हैं-

**भौम देश :-** भेद से भूमि देश तीन प्रकार का है। 1. जांगल देश, 2. आनूप देश, 3. साधारण

**जांगल देश :-** यह वायु की प्रधानता वाला होता है।

**आनूप देश :-** यह कफ दोष प्रधान होता है।

**साधारण :-** इसमें वातादि तीनों दोष समान रूप से रहते हैं अथवा दोनों देशों के मिले जुले लक्षण होने से साधारण कहा है।

**विशेष :-** जिस देश में (भूमि भाग में) पानी, पर्वत बहुत कम हो वहां वायु अपनी रुक्षता से वात प्रधान रोग करती है। इस भूमि भाग के औषध, पशु, पक्षी तथा मनुष्य वात प्रकृति वाले होते हैं अतः यह जांगल है। जहां जल, वृक्षादि, पर्वत बहुत हो, वायु एवं धूप कम हो वहां कफज प्रकृति वाले प्राणी होते हैं औषधियां स्नान देश होती हैं वह आनूप देश है। जिस भूमि भाग में दोनों देशों के मिले जुले लक्षण मिलते हैं वह साधारण देश है। इसमें प्रायः तीनों दोष सम अवस्था में रहते हैं। यह देश स्वास्थ्यकर होता है।

**क्षणादिव्याध्यवस्था च कालो भेषजयोगकृत्॥24॥**  
**शोधनं शमनं चेति समासादौषधं द्विधा।**

**काल के भेद :-** क्षण, लव, निमेषादि काल गणना वाचक तथा व्याधि की अवस्था के अनुसार काल दो प्रकार का होता है। इनका औषध उपचार में उपयोग किया जाता है। किसी रोग के साम, निराम, मृदु, मध्य आदि अवस्था को देखकर उसी के अनुरूप औषध व्यवस्था की जाती है।

**औषध के भेद :-** संक्षेप में औषध दो प्रकार की है शोधन औषध एवं शमन औषध। जो औषध कुपित दोषों को शरीर से बाहर निकालकर रोग का शमन करती वह शोधन औषध हैं तथा शमन औषध शरीर के दोषों को अपने अपने स्थान में ही शान्त कर सम करती हैं।

**शारीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम्॥25॥**  
**बस्तिविरेको वमनं तथा तैलं घृतं मधु।**

**शारीरिक दोषों की परमौषध :-** शारीरिक दोष वात, पित्त एवं कफ के विकृत होने पर क्रमशः वस्ति, विरेचन एवं वमन से शोधन करना परमौषध है। इन कर्मों के लिए अर्थात् वात में बस्ति के लिए तैल, पित्त में विरेचन हेतु धी एवं कफ में वमन के लिए मधु शमन रूप परम औषध है।

**धीधैर्यात्मादिविज्ञानं मनोदोषौषधं परम्॥26॥**

**मानस रोगों की परम औषध :-** हिताहित विवेक करने वाली बुद्धि, धैर्य धारण करना, योग, ध्यान आदि से आत्म ज्ञान होना ये तमोगुण एवं रजोगुण से उत्पन्न मानसिक विकारों की परम औषध है।

**भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्।**  
**चिकित्सितस्य निर्दिष्टं प्रत्येकं तच्चतुर्गुणम्॥27॥**  
**दक्षस्तीर्थात्तशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा शुचिर्भिर्षक्।**  
**बहुकल्पं बहुगुणं सम्पन्नं योग्यमौषधम्॥28॥**  
**अनुरक्तः शुचिरक्षो बुद्धिमान् परिचारकः।**  
**आढ्यो रोगी भिषग्वश्यो ज्ञापकः सत्त्ववानपि॥29॥**

**चिकित्सा के चार पाद :-** चिकित्सा के चार पाद (आधार) हैं। 1. भिषक् (वैद्य), 2. द्रव्य अर्थात् औषध द्रव्य, 3. उपस्थाता अर्थात् परिचारक, 4. रोगी अर्थात् आतुर। ये चारों चिकित्सा के आधार हैं। ये प्रत्येक चार चार गुण वाले होते हैं। अतः रोगी की चिकित्सा करते हुए इन 16 गुणों वाले चारों पाद होने पर रोग दूर करने में कठिनाई नहीं होती।

**उत्तम वैद्य के लक्षण :-** वैद्य के चार गुण इस प्रकार बताये हैं - 1. दक्ष अर्थात् चतुर हो, 2. जिसने आयुर्वेद का योग्य गुरु से पूर्ण अध्ययन किया हो, 3. जिसने चिकित्सा कर्म का अभ्यास किया हो एवं देखा हो 4. तथा जो मन वाणी एवं शरीर से पवित्र हो वही उत्तम वैद्य होता है।

**उत्तम औषध के गुण :-** 1. जिस औषध की अनेक कल्पना (चूर्ण, वटी आदि) की जा सकती हो, 2. जो औषध अनेक प्रकार के गुणों वाली हो, 3. जो अपने रस, गुण, वीर्यादि से सम्पन्न हो, तथा 4. देश, काल, प्रकृति आदि के योग्य हो वही उत्तम औषध है।

**परिचारक :-** 1. रोगी में स्नेह रखने वाला हो, 2. पवित्र शरीर एवं वाणी वाला हो, 3. सभी क्रियाओं में योग्य हो तथा 4. समय पर बुद्धिमता से कार्य करने वाला हो। वही उत्तम परिचारक है।

**रोगी :-** रोगी 1. धनवान हो (जिसमें कीमती औषध लेने की क्षमता हो) 2. वैद्य का आज्ञाकारी हो, 3. अपने विषय में पूर्ण जानकारी देने वाला हो तथा 4. उत्तम मनोबल वाला अर्थात् धैर्य रखने वाला हो वही रोगी उत्तम चिकित्सा लाभ का अधिकारी होता है।

**(साध्योऽसाध्य इति व्याधिर्द्धिधा तौ तु पुनर्द्धिधाः॥)** (यह श्लोक कुछ प्रतियों में हैं)

**सुसाध्यः कृच्छ्रसाध्यश्च, याप्योयश्चानुपक्रमः॥)**

**सर्वैषधक्षमे देहे यूनः पुंसो जितात्मनः॥३०॥**

**अमर्मगोऽल्पहेत्वग्ररूपरूपोऽनुपद्रवः।**

**अतुल्यदूष्यदेशार्तुप्रकृतिः पादसम्पदिः॥३१॥**

**ग्रहेष्वनुगुणेष्वैकदोषमार्गं नवः सुखः।**

**साध्यासाध्यादि लक्षण :-** (साध्य एवं असाध्य भेद से रोग दो प्रकार के होते हैं। साध्य रोग दो प्रकार का हैं-सुख साध्य एवं कृच्छ्रसाध्य) इनमें सुख साध्य उसे कहा जाता है जिसमें सभी प्रकार की औषधियों को रोगी सहन कर सकता हो, युवा हो, जो पुरुष संयम से युक्त हो, रोग मर्म स्थान का न हो, थोड़े कारणों से उत्पन्न हुआ हो, रोग के पूर्व रूप एवं लक्षण अधिक न हों, रोग उपद्रव रहित हो, धातु, देश, ऋतु एवं प्रकृति चारों असमान हो (रोग के अनुकूल न हो), चिकित्सा के चारों पाद गुण युक्त हो, मंगल, सूर्यादि ग्रह रोगी के अनुकूल हो, शुभ राशि वाले हो, रोग एक ही दोष वाला हो तथा उसका मार्ग भी एक ही हो तथा रोग नया हो तो वह सुख साध्य होता है।

**विशेष :-** कुछ प्रतियों में प्रथम श्लोक अधिक हैं।

**शास्त्रादिसाधनः कृच्छ्रः सङ्करे च ततो गदः॥३२॥**

**शेषत्वादायुषो याप्यः पथ्याभ्यासाद्विपर्यये।**

**अनुपक्रम एव स्यात् स्थितोऽत्यन्तविपर्यये॥३३॥**  
**औत्सुक्यमोहारतिकृदृष्टरिष्टोऽक्षनाशनः।**

**कृच्छ्रसाध्य रोग के लक्षण :-** जो रोग शस्त्रादि (अग्नि, क्षार) साधनों से चिकित्सा करने योग्य हो, वह कृच्छ्रसाध्य होता है तथा जो सुखसाध्य लक्षणों के विपरीत लक्षणों वाला हो, देशादि के अनुकूल लक्षणों युक्त हो अर्थात् मिले जुले लक्षणों वाला हो वह भी कृच्छ्रसाध्य होता है।

**याप्य रोग के लक्षण :-** सुख साध्य में बताये गये लक्षणों के विपरीत होने पर पथ्य, औषध, आहार-विहार के अभ्यास से अर्थात् निरन्तर प्रयोग से तथा आयु शेष होने पर सामान्य रूप में चलता रहे तथा पथ्यादि के छोड़ने पर पुनः बढ़ जाता हो वह याप्य कहा जाता है।

**अनुपक्रम (असाध्य) रोग के लक्षण :-** जो रोग सुखसाध्य व्याधि के लक्षणों के बिल्कुल विपरीत लक्षणों वाला हो वह चिकित्सा करने योग्य नहीं होता है, तथा जिसमें विषयों की प्रबल इच्छा हो, जिसका चित्त मोह युक्त हो (संज्ञानाश), बैचेनी हो, अशान्ति हो, जिस रोग में मृत्यु के लक्षण दिखाई दे वह रोग असाध्य होता है तथा जिसमें नेत्रादि इन्द्रियां नष्ट हो गई हो वह भी असाध्य होता है।

**त्यजेदार्तं भिषग्भूपैर्द्विष्टं तेषां द्विषं द्विषम्॥३४॥**  
**हीनोपकरणं व्यग्रमविधेयं गतायुषम्।**  
**चण्डं शोकातुरं भीरुं कृतञ्चं वैद्यमानिनम्॥३५॥**

**साध्य लक्षणों वाला होने पर भी चिकित्सा के अयोग्य :-** जो रोगी वैद्य एवं राजा आदि से शत्रुता रखता हो, अथवा वैद्य एवं राजा आदि के जो अनुकूल चरित्र वाला न हो, जो अपने आपसे द्वेष करता हो, जिसके पास चिकित्सा के लिए पर्याप्त धन नहीं हो, जो चिकित्सा के साधनों से रहित हो, जो बहुत घंटडी हो, जिसे चिकित्सा कराने का समय नहीं हो, वैद्य की आज्ञा को नहीं मानने वाला हो, जिसकी आयु क्षीण हो, दूसरों का अपमान करने वाला, क्रोधी, शोक में डूबा हो, डरपोक, कृतञ्च (उपकार को न मानने वाला) हो तथा जो वैद्य न होते हुए भी अपने को वैद्य समझता हो ऐसे रोगियों की चिकित्सा नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार के रोगियों की चिकित्सा करने में अपयश एवं अपमान ही मिलता है।

**तन्त्रस्यास्य परञ्चातो वक्ष्यते ध्यायसंग्रहः।**  
**आयुष्कामदिनत्वंहारोगानुत्पादनद्रवाः॥३६॥**  
**अन्नज्ञानाऽन्नसंरक्षामात्राद्रव्यरसाश्रयाः।**  
**दोषादिज्ञानतद्भेदतच्चिकित्साद्युपक्रमः॥३७॥**  
**शुद्ध्यादिस्नेहनस्वेदरेकाऽस्थापननावनम्।**  
**धूमगण्डूषदृक्सेकतृप्तियन्त्रकशस्त्रकम्॥३८॥**  
**शिराविधिः शल्यविधिः शस्त्रक्षाराग्निकर्मकौः।**  
**सूत्रस्थान इमेऽध्यायास्त्रिंशत्, शारीरमुच्यते॥३९॥**  
**गर्भावक्रान्तितद्व्यापदङ्गमर्मविभागिकम्।**

विकृतिर्दूतजं षष्ठं, निदानं सार्वरोगिकम्॥40॥  
 ज्वरासृक्ष्वासयक्ष्मादिमदाद्यशर्णोत्तिसारिणाम्।  
 मूत्राधातप्रमेहाणां विद्रध्याद्युदरस्य च॥41॥  
 पाण्डुकुष्ठानिलार्त्तानां वातास्स्य च षोडश।  
 चिकित्सितं ज्वरे रक्ते कासे श्वासे च यक्षिमणि॥42॥  
 वमौ मदात्ययेऽर्शःसु विशि द्वौ द्वौ च मूत्रिते।  
 विद्रधौ गुल्मजठरपाण्डुशोफविसर्पिषु॥43॥  
 कुष्ठशिवत्रानिलव्याधिवातासेषु चिकित्सितम्।  
 द्वाविंशतिरिमेऽध्यायाः, कल्पसिद्धिरतः परम्॥44॥  
 कल्पो वमेविरेकस्य तत्सिद्धिर्बस्तिकल्पना।  
 सिद्धिर्बस्त्यापदां षष्ठो, द्रव्यकल्पोऽत उत्तरम्॥45॥  
 बालोपचारे तद्व्याधौ तद्गृहे द्वौ च भूतगे।  
 उन्मादेऽथ स्मृतिभ्रंशे द्वौ द्वौ वर्तमसु सन्धिषु॥46॥  
 दृक्तमोलिङ्गनाशेषु त्रयो द्वौ द्वौ च सर्वगे।  
 कर्णनासामुखशिरोब्रणे भग्ने भग्नद्वे॥47॥  
 ग्रन्थ्यादौ क्षुद्ररोगेषु गुह्यरोगे पृथग् द्वयम्।  
 विषे भजङ्गे कीटेषु मूषकेषु रसायने॥48॥  
 चत्वारिंशोऽनपत्यानामध्यायो बीजपोषणः।  
 इत्यध्यायशतं विंशं षड्भिः स्थानैरुदीरितम्॥49॥

इति वैद्यपति सिंहगुप्त सूनु वाग्भट विरचितायामष्टाङ्ग हृदय संहितायां सूत्रस्थाने आयुष्कामीयो नाम प्रथमोऽध्यायः।

**इसके आगे इस ग्रन्थ के स्थान एवं उनके अध्यायों का वर्णन करेंगे:-** इस ग्रन्थ में छः स्थान तथा उनके 120 अध्याय हैं। सूत्र स्थान में आयुष्कामीयादि 30, शारीर में गर्भावक्रान्ति आदि 6, निदान स्थान में सर्व रोग निदानादि 16, चिकित्सा स्थान में ज्वर चिकित्सा आदि 22, कल्पस्थान में वमन कल्पादि 6 तथा उत्तर स्थान में बालोपचरणीयादि 40 अध्याय हैं।

**सूत्र स्थान के अध्याय :-** आयुष्कामीय, दिनचर्या, ऋतुचर्या, रोगानुत्पादनीय, द्रव द्रव्य विज्ञानीय, अन्नस्वरूपविज्ञानीय, अन्नरक्षा, मात्राशिरीय, द्रव्यादि विज्ञानीय, रस भेदीय, दोषादि विज्ञानीय, दोष भेदीय, दोषोपक्रमणीय, द्विविधोपक्रमणीय, शोधनादि गण संग्रहणीय, स्नेहविधीय, स्वेद विधीय, वमन विरेचन विधीय, बस्ति विधि, नस्य विधानीय, धूमपान विधीय, गण्डूष विधि, आश्चोतनाज्जनविधि, तर्पणपुटपाक विधि, यन्त्र विधि, शस्त्र विधि, सिराव्यधविधि, शल्याहरण-विधि, शस्त्रकर्मविधि, तथा क्षाराग्नि कर्मविधानीय। इस प्रकार सूत्र स्थान के तीस अध्याय हैं।

**शारीर स्थान के अध्याय :-** शारीर स्थान के छः अध्याय इस प्रकार हैं :- गर्भावक्रान्ति, गर्भव्यापद् विधि, अंगविभागशारीरम्, मर्मविज्ञानशारीरम्, विकृति विज्ञानीय तथा दूतादिविज्ञानीय।

**निदान स्थान के अध्याय :-** सर्व रोग निदान, ज्वर निदान, रक्तपित्त-कासनिदान, श्वास-हिक्कानिदान, राजयक्ष्मानिदान, मदात्ययादि निदान, अशर्णोनिदान, अतिसार-ग्रहणी दोष निदान, मूत्राधात निदान, प्रमेहनिदान, विद्रधिगुल्मनिदान, उदर निदान, वात व्याधि निदान तथा वात रक्तीय अध्याय इस प्रकार 16 अध्याय निदान स्थान के हैं।

**चिकित्सा स्थान के अध्याय :-** ज्वर, रक्तपित्त, कास, श्वास, हिक्का, राजयक्षमा, छार्डि, हद्रोण, तृष्णा, मदात्यय, अर्श, अतीसार, ग्रहणी, मूत्राधात, प्रमेह, विद्रधिवृद्धि, उदर चिकित्सा, पाण्डु रोग, शवयथु, विसर्प, कुष्ठ, शिवत्र, क्रिमि, वातव्याधि तथा वात रक्त चिकित्सा रूप 22 अध्याय चिकित्सा स्थान के हैं।

**कल्पसिद्धि स्थान के अध्याय :-** वमन कल्प, विरेचन कल्प, वमन विरेचन व्याप्त सिद्धि, वस्तिकल्प, बस्तिव्याप्तसिद्धि तथा छठा द्रव्य कल्प रूप कल्प सिद्धि के 6 अध्याय हैं।

**उत्तर स्थान के अध्याय :-** बालोपचरणीय, बाल रोग प्रतिषेधनीय, बालग्रहप्रतिषेधनीय, भूतविज्ञानीय, भूतप्रतिषेधनीय, उन्मादप्रतिषेधनीय, वर्त्मरोगविज्ञानीय, वर्त्मरोग प्रतिषेधनीय, सन्धिसितासित रोग विज्ञानीय, सन्धि सितासित प्रतिषेधनीय, दृष्टि रोगविज्ञानीय, तिमिर प्रतिषेधनीय, लिङ्गनाशप्रतिषेधनीय, सर्वाक्षिरोगविज्ञानीय, कर्णरोग विज्ञानीय, कर्णरोग प्रतिषेधनीय, नासारोगविज्ञानीय, नासारोग प्रतिषेधनीय, मुख रोग, मुखरोगप्रतिषेधनीय, शिररोग, शिररोगप्रतिषेधनीय, ब्रण प्रतिषेधनीय, सद्योव्रणप्रतिषेधनीय, भग्न प्रतिषेधनीय, भग्नदर प्रतिषेधनीय, ग्रन्थ्यबुद्धापचीनाड़ी विज्ञानीय, ग्रन्थ्यबुद्धश्लीपदाऽपचीनाड़ीप्रतिषेधनीय, क्षुद्र रोग, क्षुद्र रोग प्रतिषेधनीय, गुह्य रोग, गुह्यरोगप्रतिषेधनीय, विषप्रतिषेधनीय, सर्पविषप्रतिषेधनीय, कीटलूतादि प्रतिषेधनीय, मूसकालर्क प्रतिषेधनीय, रसायनीय, बाजीकरणीय नाम से उत्तर स्थान के 40 अध्याय हैं।

इस प्रकार छः स्थानों के 120 अध्याय कहे हैं।

**इति श्रीवैद्यपति सिंहगुप्त सूनु श्रीमद्वाभटविरचिताष्टाङ्गहृदयसंहितायां सूत्रस्थाने आयुष्कामीयो नाम प्रथमोऽअध्याय पूर्ण।**

इस प्रकार वैद्यपति सिंह गुप्त पुत्र श्रीवाभट विरचित अष्टाङ्ग हृदय संहिता के आयुष्कामीय नामक सूत्र स्थान का प्रथम अध्याय पूर्ण।

### आयुष्कामीय प्रथम अध्याय के विषय तालिका में

1. मंगलाचरण
2. धर्म अर्थ काम एवं सुख के साधन आयुर्वेद के उपदेशों का पालन आवश्यक।
3. अवतरण परम्परा :- ब्रह्मा-प्रजापति-अश्विनी कुमार-इन्द्र-आत्रेयादि महर्षि-अग्निवेशादि शिष्य।
4. आयुर्वेद के आठ अंग :-

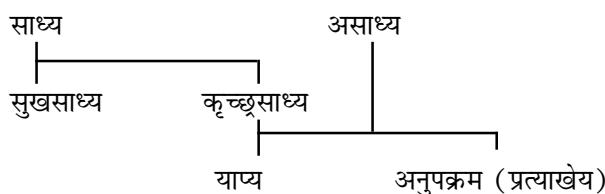
काय चिकित्सा	बाल	ग्रह	शालाक्य	शल्य	अगद	तन्त्र	रसायन	बाजीकरण
5. दोष	वात		पित्त		कफ			
6. दोष स्थान	नाभि के नीचे		हृदय नाभि के मध्य में		हृदय से ऊपर			

34. चिकित्सा के चार पाद 1. वैद्य (चिकित्सक) 2. द्रव्य (औषधादि) 3. परिचारक, 4. रोगी।

35. चारों के चार चार गुण-

वैद्य (चिकित्सक)	द्रव्य (औषधादि)	परिचारक,	रोगी
1. दक्ष (चतुर)	1. बहुकल्पवाली	1 अनुरक्त	1 धनवान
2. शास्त्र मर्मज्ञ	2. गुण सम्पन्न	2. (रोगी से स्नेह रखने वाला)	2. वैद्य का आज्ञाकारी
3. दृष्ट कर्मा (कर्माभ्यासी)	3. नवीन एवं योग्यतावाली	3. दक्ष	3. ज्ञापक (रोग के विषय में स्पष्ट बताने वाला)
4. शुचि (स्वच्छ)	उत्तम गुणयुक्त	4. बुद्धिमान	4. धैर्यवान

36. रोगों की साध्यासाध्यता



37. कुछ रोगी साध्य होते हुए भी चिकित्सा के योग्य नहीं होते हैं यथा- चिकित्सक की आज्ञा न मानने वाले, जिसकी आयु क्षीण हो, जो बहुत द्वेषी हो, जिसके पास पर्याप्त धन नहीं हो, जो वैद्य से बैर रखता हो, जो चिकित्सा की उपेक्षा करता है तथा स्वयं को चिकित्सक समझता हो।

38. अष्टांगहृदय के स्थान- 6- सूत्र, शारीर, निदान, चिकित्सा, कल्प, उत्तरास्थान

अध्याय	30	6	16	22	6	40	कुल=120
--------	----	---	----	----	---	----	---------



## अध्याय के सम्भावित प्रश्न

1. आयुर्वेद का प्रयोजन एवं अष्टाङ्ग के नाम लिखें?
2. दोषों के प्रकार स्थान, भेद तथा अग्नि एवं कोष्ठ पर प्रभाव बताइये?
3. अष्टाङ्ग हृदय लिखने का प्रयोजन एवं आयुर्वेद अवतरण बताइये?
4. त्रिदोष के गुण एवं प्रकृति का वर्णन करें?
5. धातु एवं मलों का नाम लिखकर दोष, धातु एवं मलों का क्षय वृद्धि स्वरूप बताइये?

6. रसों का नाम एवं स्वरूप बताते हुए त्रिदोष पर इसका प्रभाव बताइये?
7. वीर्य, विपाक, गुण तथा प्रभाव को स्पष्ट करें?
8. रोग एवं आरोग्य के लक्षण, कारण एवं रोगी रोग परीक्षा के साधन बताइये?
9. शरीर एवं मानस रोगों की परमौषध क्या है?
10. चिकित्सा चतुष्पाद का वर्णन करें?
11. रोगों की साध्यासाध्यता बताते हुए, त्यज्य रोगी का वर्णन करें?
12. निम्नलिखित श्लोकों की व्याख्या करें?

आयुकामायमानेन धर्मार्थं सुखं साधनम्।  
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥  
कालार्थकर्मणां योगो हीनं मिथ्याऽतिमात्रकः।  
सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगाऽरोग्यैककारणम्॥

